ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

c:t dh ykd lLdfr]ykd HkfDr vkj ykd /ke

uhye fl:g
शोध छात्रा, इतिहास
शोध केन्द्र डी0 ए0 वी0 कॉलेज
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

ब्रज के रज के कण–कण और शस्य श्यामला धरती के पत्ते में रमी हुई यह संस्कृति योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की देन है। ब्रज का नाम आते ही भगवान श्रीकृष्ण की मनमोहक छवि आँखों के सामने आ खड़ी होती है। यदि हम ब्रज की लोक संस्कृति की बात करें तो यह सदा से ही धर्ममूलक रही है। यह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक मूलतत्वों का विचार केन्द्र रही है। इसमें जीवन्तता और गतिशीलता है। इससे लोकमानस को ऊर्ध्वगामी चेतना मिलती है तथा उसे उच्च आदर्शों पर प्रतिष्ठित करती है। ब्रज संस्कृति मूलतः कृष्ण संस्कृति है जिसमें प्रेम या अनुराग उसकी धुरी है यही ब्रज लोक संस्कृति का प्राण तत्व है। लोक भक्ति और लोक धर्म इसकी सर्वोपरि विशेषतायें हैं। ब्रज की इस कृष्णपरक दृष्टि ने ही भारतीय लोकमानस को आप्लावित कर रखा है। इसकी आस्था में प्रेम और विश्वास सर्वोपरि है। समर्पण और त्याग इसका मूल मंत्र है। ब्रज का भौगोलिक परिदृश्य बड़ा मनमोहक है। यहाँ अनेक वन–उपवन, कुन्ज निकुन्ज, श्री यमुना व गिरिराज अत्यंत सुन्दर हैं पक्षियों का मधुर स्वर एकाकी स्थलों को मादक एवं मनोहर बनाता है। मोरों की बहुतायत तथा उनकी पिऊ–पिऊ की आवाज से वातावरण गुंजायमान रहता है। बाल्यकाल से ही भगवान श्रीकृष्ण की सुन्दर मोर के प्रति विशेष लगाव तथा उसके पंखों को शीश मुकुट के रूप में धारण करने से स्कन्द वाहन स्वरूप मोर को भक्ति साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान मिला है इसके अतिरिक्त गायों का भी यहाँ बड़ा महत्व है वे ब्रज संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। ब्रज के लोग गायों को अपने पारिवारिक सदस्य की भाँति पालते हैं। ब्रज की महत्ता प्रेरणात्मक, भावनात्मक व रचनात्मक है तथा साहित्य और कलाओं के विकास के लिए यह उपयुक्त स्थली है। संगीत, नृत्य एवं अभिनय ब्रज संस्कृति के

प्राण बने हैं। ब्रजभूमि अनेकानेक मठो, मूर्तियों, मन्दिरों, महन्तो, महात्माओं और महामनीषियों की महिमा से वन्दनीय है। यह सभी सम्प्रदायों की आराधना स्थली है। ब्रज की रज का महात्म्य भक्तों के लिए सर्वोपरि है। इसलिए ब्रज चौरासी कोस में 21 किलोमीटर की गोवर्धन–राधाकुण्ड, 27 किलोमीटर की गरुण गोविन्द वृन्दावन, 5–5 कोस की मथुरा–वृन्दावन, 15–15 किलोमीटर की मथुरा, वृन्दावन, 6–6 किलोमीटर नन्दगाँव, बरसाना, बहुलावन, भांडीरवन, 9 किलोमीटर की गोकुल, 7.5 किलोमीटर की बल्देव, 4.5–4.5 किलोमीटर की मधुवन, लोहवन, 2 किलोमीटर की तालवन, 1.5 किलोमीटर की कुमुदवन की नंगे पांव तथा दण्डोती परिक्रमा लगाकर श्रद्धालु धन्य होते हैं। प्रत्येक त्यौहार, उत्सव, ऋतु, माह एवं दिन पर परिक्रमा करने का ब्रज में विशेष प्रचलन है। देश के कोने–कोने से आकर श्रद्धालु ब्रज परिक्रमाओं को धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान मानकर अति श्रद्धा के साथ करते हैं। इनसे नैसर्गिक चेतना, धार्मिक परिकल्पना, संस्कृति के अनुशीलन उन्नयन, मौलिक व मंगलमयी प्रेरणा प्राप्त होती है। आषाढ़ तथा अधिक मास में गोवर्धन पर्वत परिक्रमा हेतु लाखों श्रद्धालु आते हैं ऐसी अपार भीड़ में भी राष्ट्रीय एकता और सद्भावना के दर्शन होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण, बलदाऊ की लीला स्थली का दर्शन तो श्रद्धालुओं के लिए प्रमुख हैं। ब्रज की संस्कृति को हम मंदिरमय संस्कृति भी कह सकते हैं क्योंकि पूरा ब्रज मंदिरों से भरा पड़ा है ये मंदिर ही यहाँ की संस्कृति के आइना हैं। सभी मंदिर राधा–कृष्ण के ही हो ऐसी बात नहीं है। यहाँ राम के मंदिर भी हैं। लक्ष्मण जी का कलात्मक मंदिर देखना हो तो भरतपुर में देखिये। वहाँ गंगा जी का मंदिर भी है। गंगा जी का मन्दिर गोवर्धन में दस बिस्वा मोहल्ला में भी है वहाँ चक्रेश्वर (चकलेश्वर) महादेव और मनसा देवी के प्राचीन मंदिर है। महादेव जी और हनुमान जी के मंदिर भी गाँव–गाँव शहरों–कस्बों में देखे जा सकते हैं। आगरा में कैलास, मनकामेश्वर और बटेश्वर के महादेव मंदिर प्रसिद्ध हैं। हाथरस में मनकामेश्वर, बेसबाँ (विश्वामित्रपुरी) में धरणीश्वर नाथ तथा मथुरा के चार महादेव भूतेश्वर, रंगेश्वर, पिघलेश्वर और गोकर्ण के प्रसिद्ध देवालय है। पूरे ब्रज में कामवन के कामेश्वर, गोवर्धन के चकलेश्वर, वृन्दावन के गोपेश्वर, मथुरा के भूतेश्वर कृष्ण

भगवान् के प्रपौत्र ब्रजभान ने स्थापित किए है। शक्तिस्वरूपा देवियों में यहाँ पथवारी और चामुण्डा भी है। महाविद्या भी है चर्चिका भी है गौरी और पार्वती भी है। कात्यायनी देवी, अन्नपूर्णा देवी तथा नई समेरी की देवियाँ भी हैं। बरसाने की श्री जी देवियों में पूज्य है। पूरे ब्रजमण्डल में अलग–अलग सम्प्रदायों के अपने–अपने विशाल मंदिर है। वृन्दावन इन मन्दिरों का एक समष्टिगत रूप है। ब्रज का जो आध्यात्म है वही मंदिरों की जो अर्चना पद्धति है। यहाँ का जो स्थापत्य और शिल्प है। साहित्य और संगीत है रीति–रिवाज और रहन–सहन के तरीके हैं उत्सव और त्यौहार तथा खान–पान और भोग राग आदि हैं ये ही तो ब्रज की सनातन संस्कृति के द्योतक हैं जो मंदिर में है वह ब्रज में है और जो ब्रज में है वही मंदिरों में है। यह संस्कृति अनादि और अनश्वर है। ठीक अपने आराध्य भगवान श्रीकृष्ण् की तरह इसे मुसलमानों ने नष्ट करने का यत्न किया। अंग्रेजों ने अपनी भाषा और संस्कृति के बल पर इसे जड़मूल से मिटाना चाहा परन्तु इसका बाल न बाँका कर सके। सल्तनतकालीन शासनकाल में ब्रज की बड़ी दुर्गति हुई। महमूद गजनवी ने अपने 17वें आक्रमण में मथुरा की अतुल संपत्ति व श्रीकृष्ण जन्मस्थान के अपार वैभव को लूटा था। ब्रजवासी महावन में राजा कुलचन्द के नेतृत्व में उस विशाल वाहिनी से लड़े थे परन्तु जीत नहीं सके। जिसने जनजीवन को भारी संकट में डाल दिया। इस युग में भी ब्रज संस्कृति की समन्वयशीलता ने बड़ा काम किया। इसी कारण जहाँ सभी पुराने भारतवासी हिन्दू नाम पर एक होकर एक वर्ग बन गये। वहाँ अमीर खुसरो जैसे संतों के कारण (जो ब्रजक्षेत्र के पटियाली के ही निवासी थे) हिन्दू व मुसलमान भी धीरे–धीरे एक दूसरे के निकट आये और दोनों संस्कृतियों का समन्वय होने लगा। इसी निकटता की भावना ने सम्राट अकबर के उदय की भूमिका संपादित की जो संसार में धर्म निरपेक्षता का समर्थक कदाचित उस युग का सबसे शक्तिशाली प्रथम सम्राट था, जिसका शासनकाल ब्रज क्षेत्र व भारत का स्वर्णयुग माना जाता है। ब्रज की भक्ति संस्कृति जो आज भी पूरे देश पर अपना व्यापक प्रभाव रखती है उसी युग में पल्लवित हुई, यद्यपि इसकी जड़ें तभी जम चुकी थी जब श्री निम्बकाचार्य ने दक्षिण से ब्रज पधार कर गोवर्धन क्षेत्र के निम्ब गाँव को

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

स्थायी निवास बनाया था। श्री कृष्ण के साथ राधा को जोड़कर उन्होंने भक्ति की चेतना में माधुर्य का बीज वपन किया।

आज ब्रज–संस्कृति ने जो रूप ग्रहण किया है वह 15वीं–16वीं शताब्दी की ही देन है। यद्यपि भक्ति आन्दोलन के अधिकांश आचार्य दक्षिण से पधारे थे परन्तु उन सब ने प्रेरणा ब्रज से ही प्राप्त की और अपना केन्द्र भी ब्रज को ही बनाया। रामानुज सम्प्रदाय की पहली गद्दी उत्तर भारत में गोवर्धन में ही स्थापित हुई। बल्लभ ने जतीपुरा और गोकुल को अपना केन्द्र बनाया। माधुर्य भक्ति के सृष्टा स्वामी हरिदास, हित हरिवंशजी ने बुन्देलखण्ड को छोड़कर ब्रजवास करने वाले श्री हरिराम व्यास की यह हरित्रयी ही माधुर्य भक्ति की कर्णधार थी। चैतन्य महाप्रभु तथा उनके शिष्यों ने वृन्दावन व राधाकुण्ड को अपना केन्द्र बनाया और इन सभी ने मिलकर अपने–अपने ढंग से ब्रज की भक्ति भावना के विकास प्रचार और प्रसार में योग देकर पूरे देश के निराशा के वातावरण में प्रेम, आस्था व आशा का संचार करके एक मृत संजीवनी संस्कृति को विकसित किया जो ब्रज संस्कृति कहलाई। इसी कारण ब्रज की संस्कृति क्षेत्रीय न रहकर एक बार पूरे देश के आकर्षण व प्रेरणा का स्रोत बन गयी। ब्रज की मिट्टी पवित्र मानी गयी है इसलिए उसे अनमोल कहा गया है उसकी प्रसंशा में छंद रचे गये हैं। गेय पद आज भी मन को आकर्षित करते हैं। ब्रज चौरासी कोस की यात्रा में ये पावन तीर्थ, ये कृष्ण धाम जनमानस की आस्था के प्रतीक बन जाते हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में आर0सी0 टैम्पिल, एफ0सी0 ग्राउस, भारतविद् , ब्रज लोकवार्ता के अध्येता इस विषय में पर्याप्त शोध कार्य कर गये हैं उसी दिशा में डॉ0 सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल, रामनारायण अग्रवाल, डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ0 कृष्णदत्त बाजपेयी, सेठ गोविन्ददास, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, ठाकुर भगवान सिंह, विमल, कन्हैया लाल चंचरीक, डॉ0 चन्द्रभान रावत आदि ने भी उल्लेखनीय कार्य किये हैं इनके ग्रन्थों से वर्तमान के शोधार्थियों को शोध में बड़ी सहायता मिलती है। वास्तव में धन्य है ब्रज की पुण्यतोया धरित्री जिसने राधा और कृष्ण के पदचापों की गूँज सुनी, प्रेम और रासलीलाओं को महसूस किया गोप गोपियों, ब्रजवासियों के मीठे वचन सुने।

वसुदेव–देवकी, नंद यशोदा के वात्सल्य को निहारा। साथ ही ब्रज बालाओं के रास नृत्य देखे।

दिल्ली के सुल्तानों ने इस्लामी उसूलों की पाबंदी के नाम पर मंदिर–मूर्ति, गान–वाद्य, नृत्य–नाट्य एवं चित्रकला इत्यादि सभी कलाओं के प्रति विरोधी रूख अपनाया था। इसी विरोधी दृष्टिकोण के करण इन कलाओं का बड़ा विनाश हुआ। ब्रज प्रदेश में जिन स्थानों की धार्मिक रूप से प्रसिद्धि नहीं थी वे तो सल्तनत काल में सुल्तानों की क्रूर दृश्टि से बचे रहे। फलतः वहाँ पर स्थापत्य के कुछ अच्छे नमूने बच गये थे किन्तु जब कभी किसी सुल्तान की क्रूर दृष्टि उन पर पड़ जाती, तभी उन्हें ध्वस्त करा दिया जाता था। उस काल की प्रतिकूल परिस्थिति का प्रभाव ब्रज की मूर्ति कला पर भी पड़ा और वह अपना परम्परागत गौरव खो बैठी थी और उनका विगत महत्व इतिहास की कहानी बनकर रह गये। 13वीं से 16वीं तक की चार शताब्दियों में ब्रज की मूर्तिकला की ऐसी दयनीय स्थिति हो गयी थी कि उसमें सुधार नहीं किया जा सकता था। तभी से यहाँ के परम्परागत मूर्ति निर्माताओं के घराने या तो मथुरामण्डल से हटकर राजस्थान के विभिन्न राजाओं के आश्रित हो गये थे अथवा मूर्ति निर्माण का धंधा ही छोड़ दिया था। जो लोग ब्रज में रहकर भी इसी धंधे में लगे रहे। उन्होंने अपनी कलात्मक प्रतिभा को मूर्ति निर्माण की अपेक्षा इमारतों के अलंकरण में लगाया था। इसी प्रकार भारतीय संगीत का सर्वाधिक समृद्धशाली युग मुसलमानों की विजय से पहले के स्थानीय राजाओं के काल में था। मुसलमानों के आगमन के साथ ही भारत का उन्नत संगीत पतनोन्मुखी हो गया। कट्टर मुल्लाओं के फतवा से संगीत की स्थिति निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। यदि उसी काल में उदार चिश्तिया सूफी संतों ने उसे संभालने की चेश्टा न की होती। सल्तनत काल में नृत्य एवं नाट्य कलाओं के प्रदर्शन का आयोजन करना शासन द्वारा वर्जित था। फलतः ब्रज प्रदेश में इन कलाओं के विद्वानों की तत्संबंधी रचनाओं एवं विशेषज्ञ आचार्यों के सैद्धान्तिक ग्रन्थों का बड़ा अभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार ब्रज में चित्रकला के प्रायः सभी प्रमुख रूप प्रचलित थे किन्तु सुल्तानों के विरोधी दृष्टिकोण के कारण उनका ऐसा सर्वनाश हुआ। इससे ऐसा समझा जाने

लगा है कि सल्तनतकाल में ब्रज की कोई निजी चित्रशैली ही नहीं है जबकि उस काल में अन्यत्र कई स्थानीय शैलियाँ प्रचलित थीं। परन्तु कुछ प्रमाणिक उदाहरणों से स्पश्ट हो जाता है कि ब्रज की एक निजी चित्र शैली थी जिसकी परम्परा सल्तनत काल में प्रचलित थी। इस प्रकार सल्तनत काल में इन कलाओं ने अवनति और उन्नति की उभय धाराओं के बीच किसी प्रकार अपने अस्तित्व को कायम रखा था। स्थापत्य एवं मूर्तिकला की स्थिति मुगलकाल में उन्नति एवं अवनति की बनी रही जहाँ बाबर एवं हुमायूँ के काल में तो कोई विशेष उन्नति नहीं दिखी परन्तु अकबर एवं शाहजहाँ के काल में कई महत्वपूर्ण इमारतें निर्मित हुई वहीं औरंगजेब के शासन काल में इसकी विशेष अवनति हुई क्योंकि इस काल में असंख्य इमारतों एवं मूर्ति को तोड़ा गया वहीं उसके बाद के शासकों में इसके प्रति कोई विशेष रुचि दिखाई नहीं देती है। लगभग यही स्थिति संगीत नृत्य, नाट्य एवं चित्रकला की भी थी। इन सभी कलाओं ने सहिष्णु शासकों की छत्रछाया में जहाँ उन्नति का पथ पकड़ा वहीं मजहबी विरोध के कारण इसमें अवनति होती गयी। इन कलाओं में से संगीत कला ने अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के काल में प्रगति की वहीं चित्रकला की विशेष उन्नति हमें जहाँगीर के काल में दृष्टिगत होती है। इन प्रकार मुगल काल में ब्रज कलाओं ने उन्नति एवं अवनति की धाराओं में बहकर अपने अस्तित्व को बनाये रखा था। अथवा कुछ ने एक शैली को अपनाया।

भारतीय संस्कृति के पग–पग पर ब्रज संस्कृति व्याप्त है। अपनी विशिश्ट परम्पराओं उत्तम आचार–विचार, आहार–व्यवहार एवं प्रगतिशील विचारों के कारण पथ–प्रदर्शिका बनी। ब्रज–संस्कृति में अनेक प्रकार की संस्कृतियों का समावेश होता रहा। इस कारण सर्वप्रिय बन गयी। असुर संस्कृति, नाग–संस्कृति, शाक्त संस्कृति, बौद्ध–संस्कृति, जैन संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति का समन्वय, आस्था समर्पण तथा प्रेम त्याग की संस्कृति में परिवर्तित हो गया है। ब्रज संस्कृति के उपकरणों में आचार–विचार, रहन–सहन, वेश–भूशा, कला–कौशल, मन्दिर– देवालय, उत्सव–समारोह, त्यौहार मेले ही संस्कृति को समृद्ध, अक्षुण्ण तथा उत्साहपूर्ण बनाने में सहायक है। ब्रज संस्कृति को गोपाल का पर्याय भी माना गया है। सादा जीवन

उच्च विचार, ब्रज संस्कृति का उत्तम व प्रमुख उद्देश्य रखा गया है। ब्रजवासियों का लोक जीवन सरल, सहज, सहृदय और संतोषमय है। ब्रज संस्कृति को सुसज्जित करने, सौन्दर्य में वृद्धि करने के विकास के कारण ब्रज अधिक ललित, सांस्कृतिक तथा कलात्मक बन सका। ब्रज के सरस स्वरूप साहित्य व कला वैभव की संस्कृति व सभ्यता की अमिट कथा गाथा स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। ब्रज में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के फलस्वरूप संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, मिट्टी की कला, गोबरकला, मेंहदी, अंकन, अंग–अंकन, चित्रांक वस्त्राभूषण श्रृंगार प्रसाधन आदि समस्त कलाओं ने ब्रज के सौन्दर्य को द्विगुणित किया है। इस लोककला के मर्म को ब्रज नारियों के समान अन्य प्रदेशों की नारियों ने भी अति सुघड़ता व तन्मयता से अपनाया, सजाया और सराहा है। नारियों ने अति कुशलता से ब्रज की कलाओं को संवारा और सहेजकर जीवित रखने का पूर्ण प्रयास किया है। ब्रज की सौन्दर्य बोधिनी दिव्य संस्कृति हिन्दी साहित्य पर प्रत्येक दृष्टिकोण से अपना प्रभाव बिखेरती है। श्रीमद्भागवत का पाठ, सूरसागर के पद, नन्ददास, परमानन्द दास के पद व संगीत ब्रजमण्डल की परिक्रमा, प्रकृति का वैभव, वन–उपवन, अभिवन कालिन्दी कूल कदम्ब की डार, गिरिराज की ललित तलहटी पोखर–कूप–सरोवर कुण्ड घाट और मंदिरों की झांकियों के दर्शन समवेत प्रभावशाली छाप छोड़ते हैं। कीर्तन के पद एवं वाद्य ब्रज–साहित्य की अनूठी निधि है जो सम्पूर्ण भारत में गाये–बजाये जाते हैं और घर–घर प्रचलित प्रसिद्ध हैं। ब्रज संस्कृति अपनी अपूर्व गरिमा–महिमा लेकर उन्नत हुई। इस प्रकार ब्रज–संस्कृति को हम केवल क्षेत्रीय सीमा में नहीं सीमित कर सकते, वरन् यह अपनी अनुपम व अतुलनीय विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रवेश कर अद्वितीय बन गयी है। इसने धर्म ही नहीं, साहित्य ही नहीं, वरन् राजनीति, सामाजिक तथा ज्ञान–विज्ञान को भी प्रभावोत्पादक बनाने में सफलता प्राप्त की है। आन्ध्र प्रदेश के आचार्य बल्लभाचार्य, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ब्रज के आकर्षण में बंध गये। मणिपुर में ब्रज का रास रचा जाता है। जगन्नाथपुरी के मंदिर में बलदेव और सुभद्रा की मूर्तियाँ स्थापित हैं। गुजरात में द्वारिकापुरी में ब्रज संस्कृति का ही जयघोष होता है। ब्रज संस्कृति सर्वोत्तम है। सर्वस्व है सुसंस्कृत हैं।

सम्पूर्ण भारत का दर्पण है। ब्रज की अनुपम आनन्दप्रद एवं आकर्षक छवि का दिग्दर्शन स्वर्गादपि गरीयसी की भावना में किया गया है। ब्रज संस्कृति भारत भर की समस्त संस्कृति का अमृत नवनीत है।

lUnHk xUFk

अग्रवाल, डॉ0 वासुदेव शरण : हैण्डबुक आफ दि स्कल्पचर्स इन दि कर्जन म्यूजियम, मथुरा, 1939

जगतनंद : ब्रज भक्ति विलास, इलाहाबाद, 1944

इलियन, सर हेनरी : महमूद के सत्रह आक्रमणों का वर्णन, वाल्यूम 2, लंदन, 1941

रैकिंग, जी0 : मंतखबुत्तवारीख ऑफ अल—बदायूँनी, कलकत्ता, वाल्यूम—1, 1845

साचौ, ई0सी0 : अलबेरूनीज इण्डिया, वाल्यूम—1, लंदन, 1914

ब्लाकमैन, डी0एल0 ड्रेक : डिस्ट्रिक्स गजेटियर ऑफ मथुरा, इलाहाबाद, कलकत्ता, 1911

भातखण्डे : उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, आगरा, 1942

राय, कृष्णदास : भारत की चित्रकला, दिल्ली, 1948

बाजपेयी, किशोरीदास : ब्रजभाशा का व्याकरण, कनखल, सन् 1943

मेहता, एन0सी0 : भारत की चित्रकला, नई दिल्ली, 1966

चंचरीक, कन्हैयालाल एवं पीयूश जगदीश : ब्रज संस्कृति और ब्रज का लोक साहित्य, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2009

चंचरीक, कन्हैयालाल : कोली जाति का इतिहास, यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007

थापर, रोमिला : भारत का इतिहास (1000 ई0पू0 1526 ई0), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी, 1948

शरण, बिहारी : निम्बार्क, माधुरी, वृन्दावन, 1940